B.A. History Hons, Part: II
Paper: III, Unit: I, Date: Lecture No: 29
31.10.2020

Lession: चोल प्रशासन

भारत के सुदूर दक्षिण में प्रारम्भिक मध्य काल में तुंगभद्रा नदी के दक्षिण के समूण प्रदेश में चोल जनजातीय राजवंश विशाल एवं शक्तिशाली राज्य था, जिन्होंने दक्षिण-पूर्वी एशियाई द्वीपों में भारतीय संस्कृति का प्रसार किया। भारतीय इतिहास में चोल शासन प्रणाली नौसैनिक शक्ति और स्थानीय स्वायत शासन के लिए प्रसिद्ध है। इस राजवंश की स्थापना दूसरी शताब्दी में चोल सेना नामक करिकाल ने चेरों और पांड्यों को पराजित की थी। प्रारम्भिक मध्यकाल की राजनीतिक अस्थिरता के काल दौर में चोलों को अपने क्षेत्रीय एवं राजनीतिक शक्ति के विस्तार का अवसर मिला और इस राजवंश के राजाराज और राजेन्द्र चोल जैसे प्रतापी राजाओं ने सुदूर दक्षिण में चोल राज्य की शक्ति को असाधारण विस्तार दिया। चोलों ने न केवल अपनी राज्य शक्ति का विस्तार किया, अपितु कुशल प्रशासकीय क्षमता का उपयोग करते हुए उसे संगठित भी किया। खासकर स्थानीय स्वायतशासन प्रणाली भारतीय इतिहास में चोलों की अनुपम देन मानी जाती है।

चोल सम्राटों ने केन्द्र से लेकर ग्राम स्तर तक एक सुव्यवस्थित शासन का प्रबन्ध किया। शासन का स्वरूप राजतंत्रात्मक होते हुए भी यह विकेन्द्रित स्थानीय स्वायत शासन के प्रशस्त आधार पर टिका हुआ था। इसे नौकरशाही तंत्र और प्रबुद्ध स्थानीय स्वशासन का चोल प्रशासन में अद्भुत समन्वय देखने को मिलता है। केन्द्रीय प्रशासन की धुरी स्वयं सम्राट होता है था, जिसे राजकार्य में युवराज के अतिरिक्त तीन केन्द्रीय प्रशासनिक संवर्ग के पदाधिकारी एवं कर्मचारी सहयोग प्रदान करते थे। पहला संवर्ग उच्च पदाधिकारियों का था, जिसमें प्रधान सचिव सहित अन्य सचिवगण होते थे। इन्हें ओलैनायकम कहा जाता था। दूसरे संवर्ग के अन्तर्गत कर्मचारी प्रमुख आते थे, जिन्हें पेरुवरम् कहा जाता था। तीसरी कोटि सामान्य कर्मचारियों का था, जो विडैयाधिकारिन् कहलाते थे। चोल सम्राटों के सचिवालय में इनतीनों कोटियों की सचिव एवं कर्मचारी सारे प्रशासनिक कार्यों का निपटारा करते थे।

केन्द्रीय सचिवालय की तरह सैन्य संगठन भी राजा और युवराज के प्रत्यक्ष नियंत्रण में काम करता था, जो स्वयं सेना के गठन, देखभाल तथा युद्ध में नेतृत्व करते थे। चोलों के पास एक शक्तिशाली सेना थी जो स्थल तथा जल सेना में विभाजित थी। स्थल सेना में पदाति, अश्वरोही, गजारोही और रथारोही सैनिक होते थे। चोल अभिलेख के अनुसार चोल सेना 70 टुकड़ियों में विभाजित थी और प्रत्येक टुकड़ी का अलग-अलग सेना नामक होता था। सैनिकों को राज्य के सामरिक महत्व के प्रमुख स्थलों पर छमे शिविरों में रखा जाता था। राजा और युवराज की एक विशाल रक्षावाहिनी सेना अलग से होती थी। सैनिकों को वेतन के रूप में भूमि और विजयोपरान्त पुरस्कार दिए जाते थे।

केन्द्रीय शासन के तीसरे अंग के रूप में न्यायपालिका की चर्चा की जा सकती है। स्वयं राजा के द्वारा ही न्याय का वितरण किया जाता था। प्रत्यक्ष उपस्थिति हुए गए या फिर अपीलीय मामलों में राजा स्वयं अंतिम न्याय प्रदान करता था। इस सर्वोच्च न्यायाधिकरण के अलावे न्याय कार्य को स्थानीय शासन के हवाले छोड़ दिया गया था।

राजकीय सचिवालय के अधीन विडैयाधिकारिन् (कर्मचारी) राजस्व की उगाही का काम करते थे। भूमि वाणिज्य और शिल्प, राजस्व के तीन स्त्रोत थे। मंदिर, सार्वजनिक संस्था और कर्मचारियों एवं सैनिकों की भूमि करमुक्त होती थी। ग्राम स्तर पर करों की उगाही ग्राम सभा के द्वारा की जाती थी।

चोल साम्राज्य का ढाँचा पिरामिडनुमा था। पूरे साम्राज्य को राष्ट्रम कहा जाता था। राष्ट्र मंडलों में विभाजित होते थे। मदुरा, केरल, चोलपुरम आदि चोल साम्राज्य के प्रमुख मंडल थे, जिनके पदाधिकारी महामंडलेश्वर कहे जाते थे। महामंडलेश्वर के पद पर राजपरिवार के सदस्य ही नियुक्त किए जाते थे। इनके अधीन मंडलाधिकारी होते थे, जो सैनिक तथा नागरिक दोनों कोटि के होते थे। इनका प्रमुख कार्य मंडल पर राजकीय नियंत्रण को पुख्ता करना होता था। मंडल नाडु अर्थात जिला में विभाजित होते थे। नाडु ग्राम समूहों में विभाजित होता था, जिसे कुर्रम कहा जाता था। कुर्रम गाँवों में विभाजित होता था, जो ग्राम सभा के अधीन होता था जिसे उर कहा जाता था। नाडु (जिला) तथा कुर्रम (अंचल) के स्तरों पर ग्राम सभा की भाँति समितियाँ होती थीं जिनमें कृषकों शिल्पियों और व्यापारियों के प्रतिनिधि होते थे। जाहिर है कि साम्राज्य के शासन में नृपतंत्र तथा लोकतंत्र का सुन्दर समन्वय किया गया था।

शासन की सबसे छोटी इकाई ग्राम सभा थी। तीस सदस्यीय ग्राम सभा के सभासदों का निर्वाचन प्रत्येक टोले को इकाई मानते हुए लाटरी पद्धति से होती थी। सभासद निर्वाचित होने के लिए न्यूनतम एक एकड़ के लगभग भूमि का स्वामी, अपना भवन और तीस से सत्तर वर्ष के बीच आयु का होना जरूरी था। साथ ही यह आवश्यक था स्वयं सभासद प्रत्याशी अथवा उसके परिवार का कोई सदस्य कभी किसी अपराध के दंड का भागी न बना हो। सभासदों का कार्यकाल प्रायः दो वर्षों का होता था। उपसमितियों के माध्यम से ग्राम सभा गाँवों के समस्त सार्वजनिक, न्यायिक, शैक्षणिक, कृषि, शिल्प, वाणिज्य, परिवहन, उपवन आदि के कार्यों का सम्पादन करती थी। चोल अभिलेखों के अनुसार ग्राम उपसमितियों में सामान्य प्रबन्धन, उपवन, सिंचाई, कृषि, लेखा-जोखा, भूमि प्रबन्ध, शिक्षा, न्याय, मार्ग, देवालय, मंदिर प्रबन्धन और स्वर्ण समितियों के नाम उल्लेखनीय हैं। इस प्रकार ग्राम सभा के अधीन थे। गाँव में शांति, न्याय, तथा गाँवों की सुरक्षा की जिम्मेदारी भी ग्राम सभा की होती ग्राम सभा की बैठक में कुर्रम (अंचल) और नाडु के प्रतिनिधि उपस्थित रहते थे जो न केवल ग्राम सभा के कार्यों की रिपोर्ट लेते थे, बल्कि ग्राम सभा को राजकीय निर्णय से ग्राम सभा को अवगत भी कराते थे। दो ग्रामों के बीच विवादों का निपटारा कुर्रम तथा नाडु के पदाधिकारी करते थे। ग्राम सभा अवैतनिक संगठन था। चोल शासन में कुर्रम (अंचल) तथा नाडु (जिला) के शासन में गुप्त प्रशासन की तरह कृषकों, शिल्पियों तथा वणिकों को प्रतिनिधित्व दिया गया था। राजस्व आदि का कार्य ग्राम सभा के प्रधान के द्वारा किया जाता था।

जाहिर है कि चोल सम्राटों ने केन्द्र से लेकर ग्राम स्तर तक एक व्यवस्थित एवं सुसंगठित शासन प्रणाली को विकसित किया था, जिसमें राजतंत्र तथा लोकतंत्र के बीच समन्वय करते हुए, दोनों को एक दूसरे का पूरक बनाया गया था। नीलकंठ शास्त्री के अनुसार चोल प्रशासन शासन की दक्षता और श्रेष्ठता की दृष्टि से संभवतया हिन्दू राजतंत्र का सर्वोच्च स्तर था।

□ डा० शंकर जय किशन चौधरी
अतिथि शिक्षक, इतिहास विभाग
डी० बी० कालेज, जयनगर